समृद्धि प्राप्त करने से लेकर उसका दान करने तकः समृद्ध भारतीयों का दायित्व
From Gaining to Giving Wealth: The Responsibility of India's Wealthy

ऐमिली जैन्सन्स
Emily Jansons
December 17, 2012

दुनिया के चार प्रतिशत अरबपति भारत में रहते हैं और यहाँ चार सौ मिलियन लोग गरीबी रेखा के नीचे रहते हैं और भारत के लोकोपकार क्षेत्र के निजी दानवीरों के पास इतने संसाधन हैं कि वे चाहें तो अपने देश के सामाजिक और आर्थिक विकास में नाटकीय योगदान कर सकते हैं. आर्थिक उदारीकरण के दो दशकों के दौरान भारत मध्यम वर्ग की हैसियत तक पहुँच गया है और इसके कारण घरेलू मोर्चे पर असमानता बढ़ने लगी है और पुनर्वितरण की राष्ट्रीय राजनीति और घरेलू स्रोतों पर दबाव अधिक पड़ने लगा है. इस धारणा को लेकर अब कोई विवाद नहीं है कि भारत के पास अपने विकास के लिए पर्याप्त संसाधन हैं. बल्कि अब तो सवाल यह उठने लगा है कि क्या भारत के उच्च-निवल-योग्य व्यक्ति अर्थात् समृद्ध लोग अपने ऐशो-आराम पर होने वाले खर्च में कमी करके देश के सामाजिक विकास पर अधिक खर्च कर सकते हैं. पर्याप्त मात्रा में योगदान करके भी उनके पास बहुत कुछ बच रहता है.

सन् 2011 में लोकोपकारी कार्यों के लिए भारतीय दानवीरों का योगदान $5-6 बिलियन डॉलर अनुमानित था जो सकल घरेलू उत्पाद के 0.3 और 0.4 प्रतिशत के बीच था और यह प्रतिशत सन् 2006 के 0.2 प्रतिशत से अधिक था. अमरीका के पूँजीवाद और संस्थागत दान के लंबे इतिहास के आरंभ को इंगित करते हुए कुछ भारतीय लोग भारत के सीमित लोकोपकार के ट्रैक रिकॉर्ड को उपयुक्त ही मानते हैं. परंतु यह बहाना बहुत देर तक बर्दाश्त नहीं किया जा सकेगा, क्योंकि भारतीय लोकोपकारी दानवीरों के पास औपचारिक दान देने के लिए भी प्रचुर संसाधन हैं. उन्हें इस दिशा में प्रेरित करने की बात दीगर है.

आनंद महिंद्रा के अनुसार यद्यपि सामान्य रूप में "लोकोपकार के लिए दान देने का निर्णय लोगों का पूरी तरह से निजी होता है और दबाव के बावजूद यह उनके जुनून पर निर्भर करता है", फिर भी आजकल भारत के प्रमुख व्यापारी इसके लिए विभिन्न प्रकार के दबाव महसूस कर रहे हैं. सरकार कंपनी विधेयक 2011 जैसे कानून लाकर उन्हें सामाजिक दृष्टि से ज़िम्मेदार बनाने के लिए उन पर काफ़ी दबाव डाल रही है. इस विधेयक में एक खास आकार की कंपनी के लिए सीएसआर को करोत्तर लाभ का अनिवार्य रूप से 2 प्रतिशत देने का प्रस्ताव है. यह मानते हुए कि अधिकांश भारतीय व्यापारी पारिवरिक संस्थाओं से संबद्ध हैं, व्यक्तिगत लोकोपकार और कॉर्पोरेट सीएसआर के बीच अगर पूरा नहीं तो गहरा रिश्ता ज़रूर है.

शिक्षित लोगों की बढ़ती आबादी के कारण जनता यह दबाव महसूस करने लगी है कि समृद्धि और आकांक्षाओं के बीच अंतराल बढ़ रहा है और असमानता के कारण सामाजिक अशांति का खतरा पैदा हो सकता है. एक अरबपति ने चुटकी लेते हुए कहा था, "गरीबी इतनी अधिक है कि लोग कब तक चुप बैठ सकते हैं? अगर मैं ऐसे हालात में होता तो कभी चुप नहीं बैठ सकता था. पागलों की तरह उन पर टूट पड़ता." कुछ हद तक अपराध बोध के कारण, कुछ हद तक समझदारी के कारण और कुछ हद तक जोखिम प्रबंधन के कारण भारत

के पारिवारिक कारोबारी घरानों के लिए लोकोपकार के लिए दान करना अधिक समझदारी की बात हो सकती है, भले ही यह दान कॉर्पोरेट चैनल से दिया जाए या व्यक्तिगत चैनल से. बढ़ती सकारात्मक प्रवृत्ति को देखते हुए ऐसा लगता है कि भारतीय लोग लोकोपकारी मंचों से अधिक संगठित होकर जुड़ रहे हैं और इसका दबाव अन्य उच्च-निवल-योग्य व्यक्तियों अर्थात् समृद्ध लोगों पर अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है.

अधिकांश भारतीय किसी न किसी रूप में अनौपचारिक रूप में दान देते ही रहते हैं, लेकिन जब उनका कारोबार और समृद्धि एक ऐसी दहलीज (जिसका निर्णय उन्हें खुद ही करना होगा) पर पहुँचती है तो उन्हें लगता है कि उन्हें अब अधिक संगठित और प्रभावी रूप में अपनी गतिविधियों को संगठित करना होगा. ऐसी स्थिति में पहुँचकर वे किसी न किसी प्रतिष्ठान की स्थापना कर लेते हैं. गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) के अविश्वास, आत्मविश्वास और नियंत्रण करने की इच्छा (इसका भारतीय कारोबारी परंपराओं से कोई संबंध नहीं है) जैसे अनेक कारणों से यह परिणाम निकलता है कि वे मात्र दानकर्ता संस्थाएँ बनाने के बजाय संचालन या मिश्रित मॉडल के प्रतिष्ठान बनाने को अधिक तरजीह देने लगते हैं. यही कारण है कि ऐसे मामलों में भी जहाँ ये प्रतिष्ठान स्थानीय गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) के साथ भागीदारी करते हैं, अधिक गुंजाइश नहीं बचती.

भारत एक विशाल देश है, जहाँ समाधान भी बड़े स्तर पर ही होने चाहिए. लेकिन संचालन प्रतिष्ठानों (और गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) के अंधाधुंध बढ़ने से कुछ नकारात्मक परिणाम भी सामने आने लगे हैं. संसाधनों और विशेष रूप से योग्य विकास अधिकारियों की कमी होने लगी है, जिनकी भारत में पहले से ही कमी थी. अनेक संचालन प्रतिष्ठान मार्गदर्शी परियोजनाओं के मॉडल पर आधारित हैं और उन्हें इसी उद्देश्य से बनाया गया था ताकि भारत सरकार उनके मॉडल पर अन्य मॉडल भी खड़े कर कर सके. लेकिन विडंबना यही है कि इस मॉडल में अधिक समय लगने के साथ-साथ इसका प्रभाव भी देरी से ही पड़ता है. इसकी बनिस्बत पहले से ही स्थापित प्रतिष्ठान को सहायता देना समय और प्रभाव दोनों ही दृष्टियों से बेहतर होता है.

ये प्रतिष्ठान किस लक्ष्य को केंद्र में रखकर अपने प्रयास करते हैं ? ऐक्युमैन फ़ंड के संस्थापक और मुख्य कार्यपालक अधिकारी (सीईओ) जैकलीन नोवोग्रैट्ज़ ने हाल ही में भारत पर अपने ब्लॉग में लिखते हुए कहा है कि ‘‘मुझे ऐसे बहुत कम लोग मिलते हैं जो हैंड आउट की माँग करते हों. इसके बजाय वे अपने जीवन में बदलाव लाना चाहते हैं और अपने निर्णय खुद लेना चाहते हैं.’’ क्या लोकोपकारी भारतीय दानवीरों ने किसी की बात सुनी है? विकास और रणनीतिक दान की बातें तो वे बहुत करते हैं, लेकिन आचरण में वे शिक्षा, स्वास्थ्य और आजीविका जैसे मुद्दों से अपने हाथ इसीलिए खींच लेते हैं क्योंकि इससे लिंग, धर्म और जाति के आधार पर समान अधिकार की बात भी शुरू हो सकती है. यह एक उदाहरण है,लेकिन ऐसा होने में बहुत वक्त लगेगा. बहुत कम ही यह देखने में आया है कि ये दानवीर सीधे ही दान करते हों. वस्तुतः वे ऐसे मुद्दों को चुनते हैं जो विवादग्रस्त हों और अधिकार- केंद्रित हों ताकि उनका राजनीतिकरण किया जा सके. ऐसे अतिरिक्त मुद्दे पीछे छूट जाते हैं जो दीर्घकालीन हों, जिनमें प्रत्यक्ष रूप में सरकारी प्रतिबद्धता की आवश्यकता न हो और अशक्तता, मानसिक स्वास्थ्य, यौन शिक्षा, यौन उत्पीड़न जैसी सामाजिक वर्जनाओं से जुड़े हों, परंपरागत कलाओं, पर्यावरण, और प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, कानूनी सहायता और उपभोक्ता अधिकारों की बातें हों.

अधिकांश दानवीर अपने निजी जुनून और अनुभवों के आधार पर ही निर्णय करते हैं और उनका शोध कार्य भी बुनियादी सर्वेक्षण तक ही सीमित रहता है, जैसे अपने पूर्व-निर्धारित उद्देश्य को कैसे कार्यान्वित किया जाए आदि. यदि लोकोपकार का उद्देश्य तय करने से पहले ही सर्वाधिक आवश्यकता वाले क्षेत्रों को खोजने के लिए शोध कार्य पूरा कर लिया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि भारत में विचार मंचों, शोध संस्थानों और लोकोपकार के बुनियादी ढाँचे की बेहद कमी है. ऐसे प्रतिष्ठानों की यह प्रवृत्ति है कि वे अपवाद स्वरूप कामों को हाथ में लेते हुए भी यह सुनिश्चित नहीं करते कि उनके पास इनके विवरण देने वाला कोई दस्तावेज़ भी है भी या नहीं. इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय शिक्षा प्रणाली में शोध कार्य के लिए आवश्यक कौशल का अभाव है.

शायद इस बात पर हैरानी का कोई कारण नहीं होना चाहिए कि जहाँ अधिकांश लोग केवल दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सोच पाते हों वहाँ अधिकांश पैसा प्रत्यक्ष सेवा-डिलीवरी में चला जाता है. अनेक भारतीय लोकोपकारी दानवीर अपनी कारोबारी पृष्ठभूमि के अनुभव के आधार पर ही निर्णय लेते हैं और अगर उनका प्रतिष्ठान खास तौर पर कॉर्पोरेट हो या उनके कारोबार से जुड़ा हो तो उनकी प्राथमिकता यही होगी कि वे अल्पावधि से मध्यावधि वाले साफ़ तौर पर मापे जाने योग्य क्षेत्रों में ही दान करें. जो लोग मुख्य रूप से दान इसलिए करते हों कि इससे उन्हें भावनात्मक आनंद मिलेगा उनके लिए कम लाभ वाले और दीर्घकालीन लोकोपकार के कार्य अधिक चुनौतीपूर्ण होंगे और कम संतोषप्रद भी होंगे. इसके अलावा जहाँ भी व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता होगी, उनमें ये कारोबारी लोकोपकारी दानवीर कोई दिलचस्पी नहीं लेते. आखिर जिस सिस्टम की बनिस्बत वे आज इतने समृद्ध हुए हैं उन्हें चुनौती देने के लिए बहुत बड़े आदर्शवाद की ज़रूरत होगी.

लोकोपकार अपने-आप में भारत की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता, लेकिन फिर भी आशान्वित होने के पर्याप्त कारण भी मौजूद हैं. अनेक उच्च-निवल-योग्य व्यक्तियों अर्थात् समृद्ध लोगों की कारोबारी पृष्ठभूमि बहुत महत्वपूर्ण है. उनके प्रतिष्ठानों में व्यावसायिकता, ज़िम्मेदारी, रणनीति और ऊर्जा की भावना जैसी कारोबारी शब्दावली के प्रयोग के कारण इनका संचार औपचारिक लोकोपकार क्षेत्र में भी हो जाता है. युवा पीढ़ी को लोग भी और नयी कंपनियाँ भी, जिन्हें विरासत में कम आकाक्षाएँ मिली हैं लोकोपकार के कामों में अधिक दिलचस्पी लेती हैं. दुर्भाग्यवश यह नवोन्मेष अधिकांशतः क्लासिक क्षेत्रों में ही होता है. अधिक विवादग्रस्त क्षेत्रों में और गहन शोध के आधार पर आंदोलन करने के बजाय शिक्षा के लिए एक और मॉडल दान में दे दिया जाता है. लोकोपकार का लाभ बड़े स्तर के सहयोग और संचार से ही मिल सकता है. भारतीय लोकोपकार क्षेत्र के लिए किसी नाटकीय प्रदर्शन और नये प्रतिष्ठानों की आवश्यकता नहीं है बल्कि अधिक विकसित बुनियादी ढाँचे की आवश्यकता है ताकि कॉर्पोरेट घरानों और लोगों से मिलने वाली अधिकाधिक निधियों का सही उपयोग किया जा सके और इनके प्रभावी उपयोग के लिए इन्हें सही दिशा प्रदान की जा सके. अन्यथा लोकोपकार के लिए मिलने वाली बड़ी से बड़ी रकम भी सच्चे अर्थों में भारत के कायाकल्प के लिए पर्याप्त नहीं होगी.

ऐमिली जैन्सन्स ओटावा,कनाडा के अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुसंधान केंद्र में अनुसंधान के लिए पुरस्कृत विजेता हैं और हाल ही में उनके द्वारा दिल्ली, मुंबई और बैंगलोर में फ़ील्ड अनुसंधान पर आधारित कार्य भारतीय लोकोपकार क्षेत्र से ही संबंधित है.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>